Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, Volume 3 | Issue 2 | (April – June 2026)

अनन्यता का विज्ञान : मानव सामर्थ्य एवं प्राकृतिक नियति का दार्शनिक अध्ययन

डॉ. अतुलकुमार भीखाभाई उनागर
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, गुजरात यूनिवर्सिटी, अमदावाद

शोध-संक्षेप :

इस शोधपत्र में प्राचीन चिंतन के गूढ़ और शाश्वत दार्शनिक सिद्धांतों तथा वर्तमान मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के बीच के तात्त्विक अध्ययन के पश्चात मानव-जीवन में 'अनन्यता' के विज्ञान का संपूर्ण अवलोकन और विश्लेषण किया गया है। जगत का प्रत्येक छोटा-बड़ा घटक एक सुव्यवस्थित वैश्विक-अनुशासन (ऋत) और नियतिबद्ध कार्य-कारण संबंध की श्रृंखला से सुनियोजित रूप से संचालित है। इस सार्वभौमिक नियम के अंतर्गत प्रत्येक मानव का जीवन भी एक निश्चित वैयक्तिक स्वरूप, नैसर्गिक गुण-सामर्थ्य और प्रत्येक की भिन्न-भिन्न जैविक-मानसिक सीमाओं के एक निश्चित 'प्रकृति-संपुटन' के साथ जन्म लेता है। सांख्यदर्शन के पुरुषार्थ-प्रवृत्ति नियम, भगवद्गीता के स्वधर्म-निरूपण तथा आधुनिक विभेदक मनोविज्ञान के 'वैयक्तिक भिन्नता' के सिद्धांत से यह प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है कि मनुष्य की अंतर्निहित सिद्धियाँ/शक्तियाँ तथा मर्यादाएँ ही उसके वास्तविक जीवन-कार्य, योगदान तथा कार्यक्षेत्र का निर्धारण करती हैं। इस शोध का मुख्य निष्कर्ष यह प्रतिपादित करता है कि अन्यों के बाह्य अनुकरण के स्थान पर अपनी सहज प्रकृतिदत्त अनन्यता की सच्ची पहचान और आत्मबोध ही मानवीय सामर्थ्य या सफलता का मूल स्रोत है, जिसके द्वारा स्व से वैश्विक कल्याण, सार्थक जीवन और नूतन महासर्जन संभव बनता है, इस सिद्धांत को समझने वाले प्रत्येक मानवजीवन का उद्धार निश्चित ही है।

मुख्य शब्द : मानव-सामर्थ्य, वैयक्तिक-भिन्नता, प्रकृति-संपुटन, अनन्यता, सांख्य-दर्शन, जीवनकर्म, स्वधर्म, प्राकृतिक/वैश्विक-अनुशासन (ऋत), आत्मबोध, कार्य-कारण सिद्धांत।

समस्या निरूपण :

आज भौतिकवाद की दौड़ में सफलता और सार्थकता बाह्य अनुकरण और प्रतिस्पर्धा पर निर्भर मानी जाने लगी है। और इसके कारण सबसे बड़ी समस्या उड़कर आँखों में चुभने वाली (स्पष्ट दिखने वाली) यह है कि इस गलत दौड़ में व्यक्ति अपनी नैसर्गिकता, प्रकृतिगत स्वभाव, सहजता, स्वाभाविकता, नैसर्गिक मानसिक संरचना, अंतर्निहित सामर्थ्य तथा प्रकृतिदत्त मर्यादाओं को एक ओर रखकर अप्राकृतिक जीवनशैली का आधार लेकर जगत की प्रतिस्पर्धा में भेड़चाल (गाडरियों प्रवाह) में उतरता है। और इसके कारण उसे सहजता और आनंद कभी प्राप्त नहीं होते। प्रकृतिदत्त स्वभाव, सामर्थ्य को वह कभी पहचान नहीं पाता। यदि कोई व्यक्ति अपने भीतर रही अंतर्निहित शक्तियों से विपरीत कार्य करे तो जीवन निरर्थक रहता है, पूरी जिंदगी संघर्ष रहता है, अपना या अन्यों का कल्याण नहीं होता, जीव से लेकर जगत तक कुछ भी उपजाऊ (सकारात्मक) गुणात्मक परिवर्तन नहीं आता। वर्तमान समय में अधिकांश लोगों में इस जागृति के अभाव के कारण व्यक्ति से लेकर समष्टि तक भारी नुकसान भुगतना पड़ता है। और इसीलिए व्यक्ति का जीवन सफल नहीं होता या सार्थक नहीं होता। यदि व्यक्ति को यह ज्ञान हो जाए कि ईश्वर ने उसे किस कार्य के लिए बनाया है, उसके भीतर कैसे सामर्थ्य हैं, उसकी विशेष कुशलताएँ और मर्यादाएँ कौन-कौन सी हैं तो असफल होने की महान समस्या से हम अनेक लोगों को बचा सकते हैं और इसी महान उद्देश्य के साथ यह शोधपत्र प्रस्तुत किया गया है, जो पूर्णतः प्रासंगिक है।

प्रस्तावना :

प्रकृति के नियम सुव्यवस्थित होते हैं। जगत के प्रत्येक रहस्य के पीछे वैज्ञानिक कार्यप्रणाली बुनी हुई होती है। सृष्टि की हर प्रक्रिया पूर्णतः सहज और स्वाभाविक होती है। किसी भी कार्य के पीछे कोई न कोई कारण जिम्मेदार होता ही है — यह तथ्य भारतीय दर्शन के सत्कार्यवाद अथवा कार्य-कारण सिद्धांत को पुष्ट करता है।[1] जगत के विभिन्न विषयों की उत्पत्ति, स्थिति और लय भली-भांति अनुशासित होती है। वैदिक वाङ्मय में इस सार्वभौमिक अनुशासन को 'ऋत' के रूप में प्रतिपादित किया गया है।[2]

यह प्रकृति जीवमात्र के कल्याण के लिए प्रवृत्त है।[3] सुव्यवस्थित और नियमबद्ध इस सृष्टि के दृश्य और अदृश्य कार्य अंततः मानव जाति की सहायता के लिए ही गतिशील रहते हैं। सृष्टि की इस लीलात्मक प्रवृत्ति का हमने कई बार अनुभव किया होगा, और इसके अनेक रहस्य हमारी समझ से परे भी होंगे। हम सभी के जन्म के पीछे भी एक महान रहस्य छिपा हुआ है, इसे भी दार्शनिक दृष्टिकोण से समझने की आवश्यकता है। मानव जाति के विकास के लिए सृष्टि की अनेक प्रक्रियाएं इस प्रकार प्रवृत्त रहती हैं कि, जिसके रहस्यों को हम पा नहीं सकते। परंतु एक बात निश्चित है कि हमें जो कुछ भी प्राप्त हुआ है और हमारे आस-पास जो कुछ भी घटित हो रहा है, वह हमारी भलाई के लिए ही है। इस सनातन सत्य को पूरे हृदय से स्वीकार कर लेना चाहिए।[4] 'प्रकृति के नियम कभी भी मानव जाति के लिए अवरोधरूप नहीं होते, बल्कि सहयोगी बनने के लिए होते हैं'.... अल्बर्ट आइंस्टीन।

दुनिया की तमाम समस्याओं को दूर करने के लिए प्रकृति ने अनेक विकल्पों की श्रृंखला उपलब्ध कराई है। "हमें इस जीवन के साथ मिली प्रत्येक भेंट हमारे उद्धार के लिए अनमोल है, हमें ईश्वर द्वारा जो कुछ भी मिला है, वह महासर्जन करने के लिए पर्याप्त है" मनुष्यों को मिला हुआ हृदय, बुद्धि और यह शरीर कुछ भी सृजन करने में समर्थ हैं।

मनुष्य का जन्म ही नूतन सृजन के लिए होता है... स्वामी विवेकानंद

इसलिए इस पृथ्वी पर अवतरित प्रत्येक व्यक्ति किसी निश्चित उद्देश्य के साथ पृथ्वी पर आता है, ऐसा कहना अधिक उचित रहेगा, "हम सबको इस पृथ्वी पर किसी विशेष प्रयोजन के लिए ही भेजा गया है, इस प्रयोजन को पूरा करने की सामग्री के साथ ही हम आए हैं"।[5]

सृष्टि में प्रत्येक मनुष्य के लिए अलग-अलग कार्य निर्धारित हैं, इसलिए उसी कार्य की सुसंगति में हमारा सृजन हुआ है। हम सभी अलग-अलग समस्याओं के समाधान के भाग हैं, इसलिए हम सभी का वैयक्तिक भिन्नता-युक्त पृथक अस्तित्व स्वाभाविक है; आधुनिक मनोविज्ञान में इसे वैयक्तिक भिन्नता का नियम कहा जाता है।

"नियति ने सभी से अलग-अलग अपेक्षाएँ रखी हैं, प्रत्येक को योजनाबद्ध तरीके से किसी विशेष कार्य के लिए तैयार किया है".... श्री अरविंद, द लाइफ डिवाइन

हम इस शोध-आलेख में प्रकृति द्वारा मानव जाति को दी गई एक अनूठी भेंट के बारे में चर्चा करने जा रहे हैं। वह है 'अनन्यता' (विशिष्टता), जो प्रत्येक के पास सहज ही है। विश्व में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं होगा जिसे यह अनन्यता की भेंट न मिली हो (जेनेटिक्स एवं अद्वैत वेदांत) इस अनन्यता के रहस्य को जानना और मैं स्वयं कैसा विशिष्ट हूँ, क्यों विशिष्ट हूँ, इसके विज्ञान को समझना और उसकी सच्ची अनुभूति करना ही इस अनुसंधान का मुख्य उद्देश्य है।

शोध पद्धति : प्रस्तुत शोधपत्र में मानव-जीवन में 'अनन्यता के सिद्धांत को केंद्र में रखने के कारण' और उसके उद्भव से लेकर आज तक के वैयक्तिक एवं वैश्विक प्रयोजन का अध्ययन करने के लिए गुणात्मक, वर्णनात्मक और

तुलनात्मक अनुसंधान पद्धति का उपयोग किया गया है। इस कार्य की प्रक्रिया पूर्णतः दार्शनिक और सैद्धांतिक विश्लेषण पर निर्भर है, जिसके मुख्य चरण निम्नलिखित हैं।

सूचना के स्रोतों का संकलन : सर्वप्रथम इस शोधपत्र के लिए सूचना के विभिन्न स्रोतों का संकलन किया गया है। अनुसंधान की विषयवस्तु को स्थापित और पुष्ट करने के लिए द्वितीयक स्रोतों की सहायता ली गई है। इसके अंतर्गत प्राचीन भारतीय साहित्य के मूल स्रोतग्रंथों; जैसे कि वैदिक वाङ्मय, सांख्यदर्शन आदि दर्शनशास्त्रों तथा प्रस्थानत्रयी (उपनिषद, ब्रह्मसूत्र एवं भगवद्गीता) के सैद्धांतिक संदर्भों को एकत्रित किया गया है। इसके साथ ही पूरक तथ्यों के रूप में आधुनिक विभेदक मनोविज्ञान, जीवविज्ञान तथा आदि शंकराचार्य, स्वामी विवेकानंद एवं श्री अरविंद जैसे कालजयी युगद्रष्टाओं के वैचारिक साहित्य का भी समन्वय साधा गया है।

तात्त्विक और वैचारिक विश्लेषण : प्रकृतिदत्त मानव शक्तियों और मर्यादाओं (सीमाओं) के संतुलन को समझने के लिए पूर्व आचार्यों एवं दार्शनिकों के सिद्धांतों का साम्प्रत (वर्तमान) मानव व्यवहार के परिप्रेक्ष्य में सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है।

तुलनात्मक अध्ययन : सनातन भारतीय दर्शन के 'ऋत' (वैश्विक अनुशासन), 'सत्कार्यवाद' (कार्य-कारण नियम) तथा 'स्वधर्म' के सिद्धांतों का वर्तमान मनोविज्ञान के 'वैयक्तिक भिन्नता' के सिद्धांत के साथ तुलनात्मक अध्ययन करके दोनों के मध्य निहित समानांतर वैज्ञानिक संबंध को खोजने का प्रयास किया गया है।

अध्ययन का क्षेत्र एवं सीमाएँ : प्रस्तुत शोध केवल वैचारिक, नैतिक और आध्यात्मिक समझ तक ही सीमित है। इसमें प्रयोगात्मक सांख्यिकी (Statistical Data) के स्थान पर संस्कृत वाङ्मय, श्रुति, स्मृति और आधुनिक वैज्ञानिक तर्कसंगतता को आधारभूत माना गया है; यहाँ प्रयोगात्मकता (फील्ड-वर्क) का अभाव है।

अनन्यता का तात्विक अर्थ एवं परिभाषा :

अनन्य शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ : 'अनन्य' शब्द के वास्तविक निहितार्थ को विभिन्न दार्शनिक एवं भाषिक दृष्टिकोणों से समझना आवश्यक है। व्याकरणशास्त्रीय दृष्टि से इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है।

अनन्य = अन् (निषेधार्थक / नहीं) + अन्य (दूसरा) अर्थात— 'जो दूसरा नहीं है, जो केवल एक ही है, वही अनन्य है'। अपने स्वरूप का संपूर्ण ब्रह्मांड में केवल एकमात्र होना ही अनन्यता है।

तात्त्विक स्वरूप: अनन्य = अद्वितीय, बेजोड़, अनुपम, अनूठा

शब्दावली एवं पर्यायवाची विश्लेषण : शब्दकोशीय प्रामाणिकता के अनुसार 'अनन्य' शब्द के अन्य महत्वपूर्ण पर्यायवाची शब्द निम्नलिखित हैं, जो इसके दार्शनिक गांभीर्य को स्पष्ट करते हैं। (अमरकोश, शब्दकल्पद्रुम)

अनुपम (जिसकी कोई उपमा न हो) एकमात्र (जिसके अतिरिक्त कोई अन्य सत्ता न हो)

विशिष्ट (जो अपनी सहज प्रकृति के कारण सर्वथा भिन्न हो)

एकाकी/अकेला (सृष्टि के नियम के अंतर्गत जिसका पृथक अस्तित्व हो)

भिन्न रीति अथवा भिन्न जाति का (जो स्थापित धाराओं से सर्वथा भिन्न स्वरूप रखता हो)

मात्र एक या केवल वही (जो अपरिवर्तनीय रूप से स्वयं में ही पूर्ण हो)

सृष्टिरचना एवं ईश्वर का उपहार :

अनन्यता के विज्ञान को भली-भांति समझ लेना आवश्यक है। जब प्रत्येक व्यक्ति विशिष्ट सत्ता रखता है, तब सृष्टि के सृजनहार का इसके पीछे का कोई विशेष प्रयोजन भी समझ लेने की आवश्यकता है। हम इस शोध-आलेख में व्यक्ति की अनन्यता के रहस्य का अत्यंत सूक्ष्म अध्ययन कर रहे हैं। इस अनन्यता के सिद्धांत को सांगोपांग समझना अनिवार्य है। हम जब इस अनन्यता के सिद्धांत को पहली दृष्टि से देखते हैं, तो ऐसा प्रतीत होगा कि इसमें भला नया क्या है? यह तो पहले से ही ज्ञात था। ज्ञात होना (सूचना) और समझ होना (बोध), इन दोनों में बहुत बड़ा अंतर है। ज्ञात होना अर्थात केवल जानकारी होना या सूचना होना मात्र है। जबकि समझ होना एक यथार्थ दर्शन है, जो अनुभूतिजन्य ज्ञान है। समझ एक ऐसा विवेक है जिसके द्वारा व्यक्ति उसका सांगोपांग साक्षात्कार करता है। ऐसी उचित समझ के कारण ही वास्तविक स्वरूप की प्रतीति होती है। हमें इस अनुसंधान में व्यक्ति की अनन्यता को समझपूर्वक पाने का यत्न करना है। प्रत्येक व्यक्ति में निहित विशिष्टता क्या निरूपित करती है? इस बात पर अत्यंत गहराई से विचार करने की आवश्यकता है। ईश्वर ने सबको एक समान क्यों नहीं बनाया? इस प्रश्न का तार्किक समाधान खोजने का प्रयास करेंगे।

हम सभी ईश्वर के ही अंश हैं।[6] हमारा सृजन परमात्मा ने ही किया है। उन्होंने हमें कोई विशेष उपहार देकर ही इस सृष्टि पर भेजा है।[7] हमें मिली अनन्यता कोई सीमा नहीं है, बल्कि वह तो विशेषता के रूप में मिली ईश्वर की बहुमूल्य भेंट है और वही हमारा महान सामर्थ्य है। ईश्वर किसी के भी साथ अन्याय नहीं करते और उनकी रचना के पीछे कोई महान प्रयोजन होता है, यह सनातन सत्य है।[8] धीरे-धीरे अनुसंधानकर्ता तथा सुधी पाठकों को इस बात का अहसास होने लगेगा कि इस अनन्यता के रहस्य को जानना कितना अनिवार्य है। ईश्वर के आशीर्वाद रूप में मिला यह अनन्यता का प्रसाद कितना शक्तिशाली और उपयोगी है। यदि मनुष्य अपने भीतर निहित विशेषताओं को नहीं समझ सकेगा, तो ईश्वर द्वारा दिए गए इस कृपाप्रसाद का कोई अर्थ ही नहीं रहेगा। अनुचिंतन : ईश्वर का उपहार, जो अनन्यता के रूप में मेरे भीतर निहित सुप्त शक्तियों के रूप में है, यदि कोई व्यक्ति उसे पहचानने में अनभिज्ञ रहा तो उसका क्या परिणाम होगा?

प्रत्येक व्यक्ति की परस्पर अनन्यता की अवधारणा :

विश्व में जितने भी व्यक्ति हैं, वे सभी एक-दूसरे से अनन्य हैं। ईश्वर इस सृष्टि में एक जैसा दूसरा व्यक्ति नहीं बनाते। चराचर जगत में प्रत्येक जीव का स्वरूप परस्पर भिन्न-भिन्न है। जितने व्यक्ति, उतने ही भिन्न व्यक्तित्व। प्रत्येक व्यक्ति का अस्तित्व अनूठा है। जिसके समान दूसरा न मिले, ऐसा विशिष्ट अस्तित्व हर कोई रखता है। जिसकी समानता खोजना असंभव है, ऐसा बेजोड़ स्वरूप हम सब रखते हैं। समस्त मानव एक-दूसरे से अलग-अलग होने के कारण हर एक का मनुष्यत्व अनुपम है। प्रत्येक मानव पृथक-पृथक रीति की या भिन्न-भिन्न प्रकार की सत्ता रखता है। मनुष्यमात्र विशिष्ट सामर्थ्य रखता है और इसीलिए वह अप्रतिम है। यदि प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय है, तो इस नियम के अनुसार स्वयं का अस्तित्व भी केवल एक ही है। किसी के भी जैसा दूसरा कोई नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति का यह अनूठापन और पृथकता ही सृष्टि का नियम है।

वैयक्तिक अनन्यता का प्रयोजन एवं कार्यक्षेत्र निर्धारण :

प्रत्येक व्यक्ति की अनन्यता क्या सिद्ध करती है? जगत के जनक ने प्रत्येक व्यक्ति को किसी विशेष प्रयोजन (उद्देश्य)

से ही इस पृथ्वी पर भेजा है, इस सनातन सत्य से अनुसंधानकर्ता तथा सुधी जन पूर्णतः अवगत हैं। अर्थात हमारा जन्म नियति का एक निश्चित 'विधान' है, ऐसा कहें तो भी कुछ गलत नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी निश्चित कार्य के लिए ही निर्मित हुआ है।

व्यक्ति मात्र कार्य के योग्य होता ही है, परंतु प्रत्येक व्यक्ति हर कार्य के लिए नहीं होता। संक्षेप में, हर व्यक्ति के लिए हर कार्य बना ही नहीं है। कुछ व्यक्तियों के लिए कुछ निश्चित कार्य ही तय होते हैं। ईश्वर ने सबको अलग-अलग बनाया है, इसका अर्थ ही यह है कि उन्हें कोई अलग-अलग कार्य करना है। हम जानते ही हैं कि हर मनुष्य एक-दूसरे से भिन्न और अनन्य है। इसलिए हम सब एक-दूसरे से अलग हैं और इसीलिए हम सबको अलग-अलग प्रकार का कार्य करना है। कोई कार्य छोटा और कोई कार्य बड़ा, ऐसी भ्रामक धारणा में रहना ही नहीं, दुनिया का कोई भी कार्य छोटा या बड़ा नहीं होता, यदि कोई साधक छोटे से छोटे माने जाने वाले कार्य को भी अंतिम लक्ष्य तक पहुँचाता है, तो वह परिणाम अवश्य ऐतिहासिक और अनुकरणीय बन जाएगा, इस प्रकार छोटा माना जाने वाला कार्य भी आदर्श स्थापित कर सकता है, संक्षेप में, किसी भी प्रकार के क्षेत्र में इतिहास रचा जा सकता है।

ईश्वर ने हम सबको एक विशेष प्रकृति-संपुटन दिया है, प्रभु ने इस संपुटन में विचारों, गुणों, योग्यताओं, कौशलों, शक्तियों, सीमाओं आदि का एक निश्चित समूह हमें भेंट में दिया है, प्रत्येक व्यक्ति के पास यह सब कम-अधिक मात्रा में होता ही है, यदि हम एक सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं, तो स्वतः ही सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो ही जाती हैं। हमें मिले उपहार-समूह के अनुरूप ही हम उस विशेष क्षेत्र में आगे बढ़ सकते हैं। अर्थात हमारा कार्यक्षेत्र भी हमारे अनुरूप ही होने वाला है। हमारी शक्तियों और सीमाओं को ध्यान में रखकर ही हमारा जीवनकर्म निर्धारित होता है।[१]

प्रत्येक व्यक्ति के पास सब कुछ करने का सामर्थ्य-बल नहीं होता। इस सत्य को जितनी जल्दी समझ लिया जाए, उतना ही बेहतर है। हमारा विकास उसी क्षेत्र में संभव है, जिसके लिए हम बने होते हैं। हमें प्रकृति द्वारा मिले उपहार-समूह में कुछ सीमाएँ भी होती ही हैं। इसीलिए हमारे पास हर क्षेत्र में सफल होने के लिए सभी गुण उपलब्ध नहीं होते, संक्षेप में यहाँ यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक मानव इस दुनिया में कुछ अलग नया करने के लिए अवतरित हुआ है। तो चलिए हमें मिले उत्तरदायित्व को पूर्ण करते हैं।

अनन्यता एवं मानवीय सामर्थ्य का अंतर्संबंध :

“अनन्यता ही सामर्थ्य” यह तथ्य अत्यंत विचारणीय एवं प्रामाणिक है कि हमारा अनूठापन (विशिष्टता) ही हमारा वास्तविक सामर्थ्य है, इस मानव जीवन में हम जो करना चाहते हैं, उसका मुख्य साधन हमारा यह अनूठा व्यक्तित्व ही है। प्रकृति द्वारा दी गई यह बहुमूल्य भेंट ही हमारी मूल शक्ति है, जिसके आधार पर ही मनुष्य को इस जन्म में सफलता प्राप्त करनी है, प्रत्येक व्यक्ति को अपने भीतर निहित 'अनन्यता' नामक स्व-शक्ति का भली-भांति अनुभव करना चाहिए और यह अहसास करना अनिवार्य है कि अनन्यता ही मानवीय सामर्थ्य है... स्वामी विवेकानंद - ज्ञानयोग

प्राप्त प्रकृति-संपुटन के मूल कारण एवं तार्किकताता :

प्रत्येक मानव को जो पृथक-पृथक प्रकृति-संपुटन प्राप्त हुआ है, उसके पीछे के महत्वपूर्ण कारण को भली-भांति समझ लेने की आवश्यकता है। प्रकृति प्रत्येक व्यक्ति को अलग-अलग उपहारों का एक गुण-सामोच्चय (समूह) देती है। दूसरे शब्दों में कहें तो प्रकृति ने चराचर जगत में सभी मनुष्यों को एक विशेष और भिन्न स्वरूप प्रदान किया है। इस प्राप्त प्रकृति-संपुटन में कुछ निश्चित प्रकार की ही विशिष्टताएँ समाहित होती हैं।

मानव जाति को जो संपुट प्राप्त हुआ है, उसमें कुछ ही शारीरिक शक्तियाँ, निश्चित तय गुण, विशेष प्रकार की योग्यताएँ, कुछ निश्चित प्रकार की ही अंतर्निहित शक्तियाँ और कुछ ही कौशलों का समूह कम-अधिक मात्रा में समाहित है। प्रकृति प्रत्येक व्यक्ति को अलग-अलग उपहारों का एक विशिष्ट समुच्चय देती है। इस प्राप्त गुण-संपुटन में कुछ निश्चित प्रकार के ही विचारों, गुणों, योग्यताओं, विशेष शक्तियों और कौशलों आदि बातों का कम-अधिक मात्रा में प्रत्येक जीव को पृथक भाग प्राप्त है।

शक्तियों और सीमाओं का एक निश्चित समूह ही मनुष्य को नैसर्गिक भेंट में मिला है। सृष्टि के प्रत्येक मनुष्य के पास इस निश्चित गुण-संपुटन के कारण ही शक्तियाँ और सीमाएँ कम-अधिक मात्रा में होती हैं। उपर्युक्त मूलभूत बात को लेकर अपने आस-पास दृष्टिपात करके देखने पर; वर्तमान और ऐतिहासिक घटनाओं को दृष्टिगत रखकर प्रकृति के इस अनमोल उपहार से अवगत होकर उसका साक्षात्कार किया जा सकता है। इसीलिए तो सभी प्रकार के सद्गुण सबमें देखने को नहीं मिलते। उसी प्रकार एक व्यक्ति में सभी कौशल या शक्तियाँ भी नहीं होतीं। संक्षेप में, अच्छी मानी जाने वाली सभी शक्तियों का भंडार किसी एक व्यक्ति में नहीं होता। प्रभु ने योजनाबद्ध तरीके से प्रत्येक व्यक्ति में ऐसी भिन्न-भिन्न विषमताएं रखी हैं, जिसके कारण ही प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे से अनन्य है।

ईश्वर द्वारा प्रदान किए गए इस अलग-अलग प्रकृति-संपुटन के कारण ही कोई व्यक्ति शांत, तो कोई व्यक्ति सौम्य, तो कोई व्यक्ति आक्रामक प्रतीत होता है। व्यक्ति-व्यक्ति में इतनी अधिक न्यूनता और अधिकता होती है कि एक योद्धा भी दूसरे योद्धा जैसा नहीं होता। दुनिया में करोड़ों योद्धा होते हैं, वे प्रत्येक एक-दूसरे से किसी न किसी रूप में भिन्न होते ही हैं। प्रकृति के इस शाश्वत नियम को सैद्धांतिक रूप से हृदयंगम करने के पश्चात ही अनुसंधान की दिशा में आगे बढ़ना श्रेयस्कर है।

वैयक्तिक सीमाओं का स्वरूप एवं उनका नैदानिक वर्गीकरण :

सीमाओं के विषय में टिप्पणी : जिस प्रकार शक्तियों (सामर्थ्य) का समूह व्यक्तियों में न्यून-अधिक होता है, उसी प्रकार सीमाओं (मर्यादाओं) का समूह भी कम-अधिक मात्रा में अपरिहार्य रूप से विद्यमान रहता है। मनोवैज्ञानिक एवं शारीरिक धरातल पर इन सीमाओं का स्वरूप अत्यंत वैविध्यपूर्ण है; जैसे कि कुछ व्यक्ति अधिक समय तक बैठ नहीं सकते, तो कुछ व्यक्ति अधिक समय तक खड़े रहने में असमर्थ होते हैं, तो कुछ व्यक्ति सुबह जल्दी जागरण नहीं कर सकते।

अभिव्यक्तिगत और बौद्धिक दृष्टिकोण से देखने पर, कुछ व्यक्ति किसी जटिल बात को समझा या वर्णित नहीं कर सकते, तो किसी व्यक्ति को कोई विशेष भाषा का ज्ञान नहीं होता। शारीरिक अक्षमता के परिप्रेक्ष्य में, किसी का शरीर दीर्घकाल तक कार्य करने में अनुकूलता सिद्ध नहीं करता, तो किसी के विकास में पारिवारिक परिस्थितियाँ अवरोधक बनती हैं, तो कोई अत्यधिक शारीरिक परिश्रम नहीं कर सकता आदि जैसी अनेक जैविक, मानसिक एवं सामाजिक सीमाएँ अलग-अलग व्यक्तियों की होती हैं।

कार्य-अनुकूल प्रकृति-संपुटन एवं सामाजिक समस्याओं का निदान :

जैसा संपुट वैसा कार्य : दुनिया में विभिन्न प्रकार के अनेक कार्य होते हैं, जो एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न होते हैं, इन विविध कार्यों के लिए अलग-अलग प्रकार के संपुट (गुण-समुच्चय) की आवश्यकता होती है, जैसा संपुट वैसा कार्य, ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन-कार्यों के साथ इस सत्य को भली-भांति जाँच लेना और समझ लेना चाहिए। यह ज्ञान होना अनिवार्य है, क्योंकि तभी पता चलेगा कि कैसा सामर्थ्य (संपुट) हो तो कैसा कार्य हो सकता है, जैसा

संपुट वैसा कार्य, आइए इस सिद्धांत को अच्छी तरह समझें।

नीचे कुछ समस्याएँ दी गई हैं, उन समस्याओं के समाधान के लिए व्यक्ति में कुछ निश्चित गुण होने चाहिए, कोष्ठक में दिए गए गुण केवल उदाहरण मात्र हैं, उनका या उनके जैसे अन्य गुणों का एक से अधिक बार उपयोग करके दी गई समस्या के सामने अंकित करें।

(वाचन, पुरुषार्थ, श्रेष्ठ आदतें, आत्मविश्वास, नैतिकता, आत्मीयता, नम्रता, क्षमाभाव, करुणा, उदारता, शौर्य, साहस, हिम्मत, विवेक, दान, त्याग, आचरण, सेवाभाव, व्यायाम, संयम, नियम-पालन, धैर्य, धनसंग्रह, स्वच्छता, प्रामाणिकता, कर्तव्यनिष्ठा, संगठन-कौशल, नेतृत्व-क्षमता, विश्वास, निरंतरता, तत्परता, लेखन-कौशल, वक्तृत्वकला, पवित्रता, वफादारी, सात्विक आहार, सादा जीवन, सत्संग आदि)

1. पर्यावरण-रक्षा के लिए? : नियम-पालन, संयम, स्वच्छता, निरंतरता, सेवाभाव, कर्तव्यनिष्ठा, विवेक।
2. गरीबी दूर करने के लिए? : पुरुषार्थ, उदारता, दान, संगठन-कौशल, नेतृत्व-क्षमता, प्रामाणिकता, धैर्य।
3. साक्षरता बढ़ाने के लिए? : वाचन, लेखन-कौशल, वक्तृत्वकला, निरंतरता, तत्परता, सेवाभाव, धैर्य।
4. चरित्र-निर्माण के लिए? : नैतिकता, आचरण, श्रेष्ठ आदतें, पवित्रता, सात्विक आहार, सत्संग, विवेक।
5. भ्रष्टाचार दूर करने के लिए? : प्रामाणिकता, कर्तव्यनिष्ठा, साहस, वफादारी, सादा जीवन, संयम, नियम-पालन।
6. समानता स्थापित करने के लिए? : आत्मीयता, नम्रता, क्षमाभाव, करुणा, उदारता, विवेक, विश्वास।
7. व्यसनमुक्ति के लिए? : आत्मविश्वास, संयम, श्रेष्ठ आदतें, व्यायाम, सत्संग, निरंतरता, नियम-पालन।
8. बेरोजगारी दूर करने के लिए? : पुरुषार्थ, संगठन-कौशल, नेतृत्व-क्षमता, तत्परता, निरंतरता, साहस, कर्तव्यनिष्ठा।
9. निरामय (स्वस्थ) समाज बनाने के लिए? : व्यायाम, सात्विक आहार, स्वच्छता, नियम-पालन, संयम, विवेक, आचरण।

परिमितता के परिणाम एवं जीवन-कर्म पर उसका प्रभाव :

परिमितता के परिणाम (सिद्धांत विश्लेषण) - परिमितता अर्थात प्रकृति के विरुद्ध, सीमाओं से युक्त होना, अनन्यता के कारण हमारी सहज प्रकृति के अनुसार ही हमारा कार्यक्षेत्र निर्धारित होता है। उस निर्धारित क्षेत्र के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में हमारी कई (परिमितता) सीमाएँ आ जाती हैं, जिसके कारण कोई भी व्यक्ति अपनी मूल प्रकृति के विरुद्ध और सीमा वाले क्षेत्र में सफल नहीं हो पाता है।

इस शाश्वत सत्य के आलोक में निम्नलिखित व्यावहारिक पक्षों का चिंतन एवं वस्तुनिष्ठ विश्लेषण आवश्यक है...

- परिमित कोई भी व्यक्ति यदि शिक्षक बने तो क्या परिणाम होगा?
- परिमित कोई भी व्यक्ति यदि चिकित्सालय (अस्पताल) शुरू करे तो क्या परिणाम होगा?
- परिमित कोई भी व्यक्ति यदि पुलिस बने तो क्या परिणाम होगा?
- परिमित कोई भी व्यक्ति यदि राजनेता बने तो क्या परिणाम होगा?
- परिमित कोई भी व्यक्ति यदि भक्त बनकर आश्रम खोले तो क्या परिणाम होगा?

सीमाओं की भिन्नता एवं तार्किक तर्कसंगतता :

एक व्यक्ति की सीमा (मर्यादा) दूसरे व्यक्ति की सीमा हो भी सकती है, और नहीं भी। कोई विशेष व्यक्ति एक ही कार्य लंबे समय तक नहीं भी कर सकता, तो वही कार्य कोई अन्य व्यक्ति आसानी से निष्पादित कर भी सकता है। इस प्रकार परिमितता (सीमाएँ) भी एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न-भिन्न होती हैं, प्रत्येक व्यक्ति में परिमितता भी कम-अधिक मात्रा में होती है।

तार्किक विमर्श : क्या किसी व्यक्ति की सीमाएँ उसके नूतन सृजन में अवरोध उत्पन्न कर सकती हैं?

सैद्धांतिक दृष्टिकोण : मनुष्य की सीमाएँ अवरोध नहीं, बल्कि उसके सही कार्यक्षेत्र का नैसर्गिक मार्गदर्शक हैं। अपनी प्रकृति के विरुद्ध जाकर कार्य करने से विकृति और विफलता आती है, जबकि सीमाओं को स्वीकार कर स्वधर्म में प्रवृत्त होने से महासर्जन संभव होता है।[11]

निष्कर्ष

अनन्यता ही वास्तविक सामर्थ्य है, अनन्यता ही एक विशिष्ट एवं मौलिक पहचान है, चराचर जगत में सब एक-दूसरे से अनन्य या विशेष हैं, हम जैसे हैं, अपनी सहज प्रकृति में वैसे ही पर्याप्त (पूर्ण) हैं, समष्टि में प्रत्येक जीव का अस्तित्व महत्वपूर्ण है, स्वयं का अस्तित्व अनन्य है और मेरा जीवन-कार्य भी अनन्य है, जैसी अनन्यता होती है, वैसा ही नूतन सृजन परिलक्षित होता है, प्रत्येक व्यक्ति अनंत संभावनाओं का एक पुंज है, प्रत्येक व्यक्ति हर प्रकार का कार्य कदापि नहीं कर सकता, प्रत्येक व्यक्ति के पास प्रकृति द्वारा निर्धारित अपना एक विशेष कार्य है, सबको ईश्वर द्वारा एक विशेष प्रकृति-संपुटन प्राप्त हुआ है, जीव को ईश्वर द्वारा प्रवृत्त इस गुण-संपुटन को स्वयं पहचानना है, इस चराचर दुनिया में मेरे (प्रत्येक जीव) लिए भी कुछ विशेष सृजनात्मक कार्य निर्धारित है, प्रत्येक व्यक्ति वैश्विक व्यवस्था में किसी न किसी विशेष समस्या का समाधान है, प्रत्येक व्यक्ति से सभी प्रकार के गुणों या कार्यों की अपेक्षा रखना सर्वथा व्यर्थ है।

पाथेय : फलश्रुति एवं भविष्यगामी दिशा

इस शोध-प्रबंध में दर्शाए गए सभी तथ्यों को सुधी पाठकों एवं शोधार्थियों ने अपने अनुभव की कसौटी पर अवश्य परखा होगा, आप सभी अनन्यता के विज्ञान से भली-भांति अवगत हुए होंगे, इस प्रक्रिया में यह अहसास होना अनिवार्य है कि अनन्यता को समझना और उसे वास्तविक जीवन में अनुभव करना कितना आवश्यक है।

यदि हम अनन्यता के इस विज्ञान को ठीक से नहीं समझेंगे, तो अपने प्रति और समाज के प्रति कितनी बड़ी वैचारिक भूल कर बैठेंगे, इसका बोध होना अत्यंत आवश्यक है, अनन्यता की अज्ञानता किसी भी प्रगतिशील चेतना को शोभा नहीं देती।

इस शाश्वत सिद्धांत को समझने के बाद हमें अपनी मौलिक अनन्यता के अनुसार ही जीवन-लक्ष्य का चयन करना चाहिए और दूसरों को भी इसके लिए प्रेरित करना चाहिए। हम सभी को इस अनन्यता की खोज की साधना निरंतर करते रहना चाहिए और हमारे संपर्क में आने वाले अन्य लोगों को भी इस आत्मबोध की साधना की ओर प्रवृत्त करते रहना चाहिए।

संदर्भ

1. सांख्यसूत्र, अध्याय-१, सूत्र-११५
2. ऋग्वेदसंहिता, मण्डल-१०, सूक्त-१९०, मन्त्र-१
3. ईश्वरकृष्ण, सांख्यकारिका, कारिका-२१
4. ईशावास्योपनिषद्, मन्त्र-१
5. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय-१८, श्लोक-४६
6. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय-१५, श्लोक-७
7. श्रीमद्भगवद्गीता, १५.७
8. ईश्वरकृष्ण, सांख्यकारिका, कारिका-२१
9. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय-२, श्लोक-३१-३८ एवं अध्याय-१८, श्लोक-४७
10. ईश्वरकृष्ण, सांख्यकारिका, कारिका-११-१४ तथा श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय-३, श्लोक-३५
11. भगवद्गीता ३.३५